ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1*February- 2018
Innovation The Research Concept

ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों में वर्ण–व्यवस्था एवं शूद्रों की स्थिति : एक ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण

फूलसिंह सहारिया
एसोसियेट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
बाबू शोभाराम राज. कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

भारतीय संस्कृति विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भारत सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से 'विश्व गुरू' रहा है जो कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था। इसी भूमि को 'देवभूमि' भी कहा गया है। भारतीय संस्कृति की इसी तपोभूमि में ही महावीर स्वामी एवं गौतम बुद्ध ने जन्म लिया तथा मानवता का पाठ पढ़ाया। भारतीय संस्कृति के प्रमुख आधार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आश्रम–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, पुरुषार्थ– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा 16 संस्कार हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास में जब सामाजिक स्थिति का अध्ययन करते हैं तो उनमें वर्ण व्यवस्था को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है लेकिन चौथे शूद्र वर्ण की वास्तविक स्थिति को देखते हैं, तो उसकी स्थिति मानवीयता से कोसों दूर दिखाई पड़ती है। ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों में वर्ण–व्यवस्था का उल्लेख खूब किया है जिस पर इस लेख के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों के लेखन में ब्राह्मण वर्ग का ही वर्चस्व रहा है ये सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं तथा इन्होंने इन ग्रन्थों में अपने स्वार्थों और अधिकारों को ही उच्च स्थान दिया है। अन्य वर्णों विशेष कर चौथे वर्ण शूद्र को अधिकार विहीन करते हुए अपने धर्म (कर्त्तव्य) के प्रति पूर्ण निष्ठा से समर्पित रहने के लिए निर्देशित किया तथा उनके मानवीय अधिकारों का हनन खुले रूप से किया है। ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों में वर्णित वर्ण व्यवस्था के चौथे वर्ण शूद्रों की स्थिति का एक ऐतिहासिक अध्ययन निम्न प्रकार से रेखांकित कर सकते हैं–

ऋग्वेदिक कालीन समाज में दो वर्ण थे। आगरत्य ऋषि ने दोनों वर्णों और अनार्य का उल्लेख किया है।[1] डॉ. वी.सी. पाण्डेय का मानना है कि आर्यों और अनार्यों को पृथक–पृथक समुदाय घोषित करने का काम सर्व प्रथम उनके रंग ने किया। अतः समाज में अभी दो ही वर्ण थे। एक आर्यों का दूसरा अनार्यों का। भारतीय संस्कृत साहित्य में वर्ण शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है जो पूर्व वैदिक युग की समाज रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है। उसमें वर्ण का प्रयोग रंग अथवा आलोक के अर्थ में किया है।[2]

मुख्य शब्द : वैदिक काल, वर्ण व्यवस्था, उत्तर वैदिक काल, सूत्र काल, स्मृतिकाल, दण्ड व्यवस्था

प्रस्तावना

ऋग्वेद में कहीं पर वर्गों के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। ऋग्वैदिक समाज में कहीं पर भी वर्ण व्यवस्था जैसी कोई चीज देखन को नहीं मिलती परन्तु ऋग्वेद के 10वें मण्डल के पुरुष सूक्त[3] में पहली बार चार वर्णों का उल्लेख हुआ है। उसमें कहा गया है कि ब्राह्मण परम पुरुष के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जांघों से और शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुआ। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि ऋग्वेद का पुरुष सूक्त वाद में जोड़ा गया अंश है जो ऋग्वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश नहीं डालता है। यहां किसी ने अपने को श्रेष्ठ साबित करने की प्रथम बार कुचेष्टा करने कोशिश की थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर एक व्यक्ति कहता है कि मैं कारू (मन्त्र निर्माता) हूँ। मेरे पिता भिषक (वैद्य) हैं और मेरी माता उपलप्रतिक्षिणी (पत्थर की चक्की से अनाज पीसने वाली) है।[4] अतः स्पष्ट है कि ये ब्राह्मण–कर्म के अनुशरण से ही ब्राह्मण बना था। अतः ऋग्वैदिक समाज में आदर्श सामाजिक स्थिति थी क्योंकि एक ही छत के नीचे एक ही परिवार के लोग विभिन्न कार्य करते हुए रहते थे। इस काल में ब्रह्म, क्षत्र और विश का साथ–साथ उल्लेख मिलता है अतः कर्म के आधार पर तीन वर्णो की स्थापना होती दिखाई देती है।

अध्ययन का उद्देश्य

विश्व गुरु, देव भूमि, वसुधैव कुटुम्बकम जैसे विशाल अर्थ देने वाले शब्द भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों

का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि समाज चार वर्णो एवं जाति व्यवस्था के कठोर नियमों में बंधना समाज को कमजोर करता है जिससे अमानवीयता झलकती है। उक्त धर्म ग्रन्थों में चौथे वर्ण शूद्र की वास्तविक स्थिति का अध्ययन उद्देश्य है।

उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था विकसित दिखाई देती है। अथर्ववेद में राजन्य, वैश्य, शूद्र और आर्य चार सामाजिक विभागों का उल्लेख करता है।[5] उत्तर वैदिक काल में चारों वर्णों के लिए विभिन्न यज्ञोपवीत की कल्पना की गई। यथा–ब्राह्मण सूत का, क्षत्रिय सन का, वैश्य ऊन का, यज्ञोपवीत धारणा करेगा। इस काल में चतुर्थ वर्ण शूद्र को किसी प्रकार के जनेऊ (यज्ञोपवीत) धारण करने की बात नहीं कही गई है। इसी प्रकार से हवन करने के लिए ब्राह्मण को बसन्त में, क्षत्रियों को ग्रीष्म मे, वैश्य को शीत में, रथकार को वर्षाकाल में करना चाहिए।[6] अतः इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था कठोर होती दिखाई पड़ती है। शूद्र वर्ण की पूर्णतया उपेक्षा होने के साथ तृस्कृत होना भी स्पष्ट झलकती है। इस काल में ब्राह्मण सर्वोच्य था लेकिन क्षत्रिय वर्ण ने भी कठिन अध्ययन और लग्न के द्वारा ब्राह्मणों के सामान आदर प्राप्त कर लिया वैश्य वर्ण की यहां उपेक्षा तो नहीं की गई लेकिन राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाने में वैश्यों का पूर्ण सहयोग रहा। उत्तर वैदिक काल में वैश्यों के लिए अन्यस्य वलिकृत कहा है।

उत्तर वैदिक काल मे शूद्रों को अधिकार विहिन करने की प्रक्रिया के साथ–साथ इनमें अनेक वर्गों यथा–चाण्डाल, पौल्कस, निषाद्, उग्र, आयोगव, मागध, वदेहव का उल्लेख होने लगा।

सूत्र काल मे वर्ण व्यवस्था का पुनः संगठन किया गया। इस काल में जैन एवं बौद्ध धर्म द्वारा इस वर्ण व्यवस्था का विरोध किये जाने के पश्चात् भी जन्म के आधार पर घोषित किया गया।[7] बाह्मण विशेषाधिकार प्राप्त थे जैसे–अवध्य, अदण्डनीय, अवहिष्कर्म्य, और अपरिहार्य।[8] इस काल में भी ब्राह्मण शीर्ष पर था, क्षत्रियों को दूसरा दर्जा ही प्राप्त था। उदाहरण के तौर पर यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण का अपमान करे तो उस पर 100 कर्षापण का जुर्माना लगेगा।[9] परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय का अपमान करे तो उस पर 50 कर्षापण जुर्माना होगा। प्रत्येक वर्ण राज्य को कर देता था परन्तु ब्राह्मण उससे मुक्त था।[10] ब्राह्मण, को क्षत्रिय की भांति वेश्यों को अध्ययन, यज्ञ और दान देने का अधिकार था।[11] सूत्रकाल में शूद्रों की स्थिति और दयनीय हो गई थी। ब्राह्मण द्वारा क्षत्रियों व वेश्यों का अपमान करने पर ब्राह्मण पर 50 और 25 कार्षापण जुर्माना था परन्तु शूद्रों द्वारा तीनों वर्णों की सेवा करना उसका प्रमुख कर्म था। शूद्र यज्ञ स्थल पर नहीं जा सकता था। शूद्र और आर्य पुरुष के सम्बन्धों को उचित ठहराया है। शूद्र को विद्या उपदेश नहीं देने का उल्लेख किया है।[12] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों के उपनयन संस्कार की आयु 8,11,12 में होना चाहिए।[13] शूद्र वर्ण के लिए कोई उपनयन संस्कार एवं आश्रम व्यवस्था नहीं थी, उसे केवल ग्रहस्थ आश्रम में रहने की व्यवस्था थी। संस्कार व्यवस्था भी तीन वर्णों के लिए थी। शूद्र इससे भी वंचित थे।

सूत्र काल के पश्चात् स्मृतिकाल में प्रमुख स्मृति रचनाकर मनु एवं याज्ञवल्क्य प्रमुख हैं। इन स्मृतियों में वर्ण व्यवस्था पर जोर दिया गया है और चारों वर्णों के कर्तव्यों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया गया है– मनु ने इस व्यवस्था के माध्यम से सारी हदें पार कर दी हैं। उसने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के अधिकारों को विस्तृत कर दिया है परन्तु शूद्र को गुलामी की बेड़ियों में जकड़ने की जो व्यवस्था की उसने मानवता को शर्मसार किया है। मनुस्मृति में सामाजिक व्यवस्था को चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में वर्गीकृत माना है। व्यक्ति के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को चार आश्रमों में विभाजित किया है। मनु ने वर्ण आश्रम के आधार पर व्यक्ति के कर्तव्यों की विवेचना की है। मनु ने ब्राह्मण को सम्पूर्ण वर्ण व्यवस्था में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर रखा है।[14] मनु ने ब्राह्मणों के कर्तव्यों की विवेचना में अध्ययन, अध्यापन, दान देना व दान लेना सम्मिलित किया है।[15] क्षत्रियों के लिए–प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, विषय में आसक्ति नहीं रखना आदि कर्तव्यों को माने जाने की व्यवस्था दी है। वैश्यों को आर्थिक व्यवस्था के संचालन, पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज लेना, कृषि करना आदि कर्तव्य निर्धारित किये हैं।[16] मनु ने चौथे वर्ण शूद्र को निम्नतम स्थान पर रख कर शेष तीन वर्णों की सेवा का दायित्व प्रदान किया है। मनु का कहना है कि शूद्रों को अन्य वर्णों की निन्दा, अनिन्दा या प्रशंसा पर विचार किए बिना सदैव सेवा कार्य में लगे रहना चाहिए। मनु स्मृति में उल्लेख है कि–'एक मेव तु शूद्रस्य प्रभुकर्म समादिशत्। एतेषा मेव वर्णाना शूश्रवा सूयया।[17] अर्थात् ईश्वर ने शूद्र के लिए एक ही कर्म का आदेश दिया है कि वह तीनों वर्णों का ईर्ष्या रहित होकर सेवा करे। इसी प्रकार से शूद्रैव भार्या शूद्रस्य साचस्वाचविशः स्मते। ते च स्वा चैव राजश्रव स्वाचाग्र जन्मनाः। अर्थात् शूद्र कन्या से तीनों वर्णो के लोग विवाह करें लेकिन शूद्र केवल शूद्रा से ही विवाह कर सकता है। ना विप्र स्वेषु तिष्ठत्यु मृतं शूद्रेंण नाययते। अस्वार्णा ह्याहुति : सा स्चाच्छूद स्पंस्पर्श दूषिता।[18] अर्थात् स्व लोगों के रहते हुए मृतक ब्राह्मण को शूद्र से न उठवाएं, क्योंकि शूद्र के स्पर्श से दूषित होने के कारण मृतक का देह को स्वर्ग प्राप्त नहीं होगा। धर्मोपदेश दर्पण विप्राणामस्य कृवर्तः। तप्त मासेचये तलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः।।[19] अर्थात् यदि शूद्र ब्राह्मणों को अभिमान से धर्म का उपदेश करे तो राजा उसके मुँह और कान में खोलता हुआ तेल डाले। मनु ने यह भी कहा है कि यदि शूद्र के कानों में गलती से वेद मन्त्र पड़ जाये तो उसके कानों में पिघला हुआ सीसा डालकर उसे दण्डित किया जाना चाहिए। मनु का शूद्रों के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त भेदभावपूर्ण है। मनु वास्तव में शूद्रों को स्वतन्त्र नागरिक का स्तर प्रदान नहीं करता है। मनुस्मृति में शूद्रों को दास बना लेने का समर्थन किया है। दास रूप में मनु शूद्र को वेतन दिया जाना भी अनिवार्य नहीं मानता।[20] शूद्रों की सम्पत्ति अनिवार्य रूप से उसके स्वामी को ही दे देनी चाहिए क्योंकि उसका कोई निजी धन नहीं हो सकता। उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पर स्वामी का ही अधिकार होता है।[21] मनु ने दण्ड, न्याय व न्यायिक प्रक्रिया आदि के

प्रसंगों में शूद्रों के प्रति असमानता व भेदभावपूर्ण व्यवहार को मान्यता दी है।[22] मनु द्वारा वर्णित चार वर्णों के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सामाजिक व्यवस्था में समानता के सिद्धान्त को मान्यता नहीं देता है तथा इस भेदभावपूर्ण व्यवस्था का कोई तर्क सम्मत आधार व औचित्य दिखाई नहीं देता है।

इसी प्रकार से मनु के अतिरिक्त अन्य स्मृतिकारों ने शूद्रों के बारे में बहुत कुछ लिखा है लेकिन उनके कुछ ही दृष्टान्त दिया जाना उचित रहेगा– जप, हवन इत्यादि ब्राह्मणोचित कर्म करने वाले शूद्र का राजा वध कर देवे क्योंकि जैसे जलधारा अग्नि को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार ब्राह्मण के कर्म को करने वाला शूद्र राज्य को नष्ट कर देता है।[23] जप, तप, तीर्थ यात्रा, सन्यास, मन्त्र साधना व देव पूजा ये छः कर्म शूद्रों तथा स्त्रियों द्वारा करने पर पतन के कारण होते हैं।[24] वर्णों में शूद्र वर्ण सभी संस्कारों से विहीन हैं, शूद्र के तो केवल यही संस्कार हैं कि वह तीनों वर्णों को स्वयं को समर्पित कर देवे।[25] जो शूद्र अपने स्त्री, धन तथा अपने प्राण तीनों को ब्राह्मण की सेवा में समर्पित कर देता है उस शूद्र का अन्न भोजन योग्य है।[26] शूद्र सर्वदा जीण–क्षीण वस्त्रों को धारण करें, ब्राह्मण के द्वारा झूठा छोड़ा हुआ भोजन करें तथा ऐसा आचरण करने से शूद्र के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह इन्द्र के स्थान को प्राप्त करता है।[27] ब्राह्मणी से उत्पन्न शूद्र की संतान चाण्डाल कहलायेगी जिसके आभूषण सीसे तथा लोहे के होंगे, गले में चमड़े का पट्टा तथा बगल में झाड़ू बांधकर रहेगा, दोपहर से पहले गांव के मलमूत्र को उठायेगा और दोपहर बाद गांव में प्रवेश ना करे तथा गांव के नैऋत्य दिशा में निवास करे।[28] जो ब्राह्मण शूद्र के अन्न को खाता है, वह मरने पर उसी गांव में शूकर बनकर पैदा होता है या शूद्र के रूप में ही जन्म लेता है।[29] ब्राह्मण की आज्ञा पालन करने वाले शूद्र को पृथ्वी पर ही (बिना पात्र के) अन्न खाने के लिए देना चाहिए, कारण कि जैसा कुत्ता होता है वैसा ही शूद्र।[30] अतः इन स्मृतियों में इस तरह के उल्लेख काफी मात्रा में किये गये हैं। जिनसे ऐसा लगता है कि जिसके द्वारा लिखा जा रहा है वह सही लिखा जा रहा है तथा ऐसे ग्रन्थों को हम धर्म ग्रन्थ कहते हैं जो कि वास्तविक रूप से ये मानवीयता से कोसों दूर है।

महाकाव्य काल में चतुवर्ण व्यवस्था का उल्लेख है। ब्राह्मण वर्ण सर्वोच्चता पर है वह अवध्य और कर मुक्त है।[31] परन्तु महाभारत में स्पष्ट कहा गया हैं कि अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने वाला ब्राह्मण सम्मान खो बैठता है। बिना पढ़ा–लिखा ब्राह्मण मृगचर्म के समान है।[32] क्षत्रियों को द्वितीय स्थान प्राप्त था। रामायण के अनुसार क्षत्रियों को अध्यापन अथवा याजन (यज्ञ कराने) का अधिकार नहीं था।[33] इस काल में कुछ विचारक वर्ण व्यवस्था को जन्म के आधार पर न मानकर कर्म के आधार पर मानने की चेष्ठा करते दिखाई देते हैं। रामायण में एक स्थान पर कहा गया है कि जन्म से वही वीरता से ही कोई क्षत्रिय होता है।[34] गुण, शोर्य, तेज, धृति, दाम्य, युद्ध से पलायन, दान और ईश्वर भाव क्षत्रिय वर्ण के स्वाभाविक लक्षण थे।[35] वैश्य वर्ण के लिए कहा गया है कि वैश्य समाज का ऐसा वर्ग था जिसने अध्ययन और यजन के कर्मों को छोड़कर कृषि– कर्म तथा गोपालन वृति का अनुशरण किया। वैश्व वर्ग का उद्देश्य धनार्जन करना एवं सर्वाधिक राजकर देना था।[36] महाकाव्य काल में शूद्रों का स्थान निम्न था और उसका कर्म अन्य वर्णों की दास के रूप में सेवा करना था।[37] शूद्र को अध्ययन एवं यज्ञ की अनुमति नहीं थी और ना ही वह किसी ऋषि के अश्रम में प्रवेश कर सकता था। अनाधिकृत तप करने वाला शूद्र उपेक्षणीय एवं निन्दनीय था। शूद्र शम्भूक ने जब तप करने की चेष्टा की तो राम के द्वारा उसका वध कर दिया गया।[38] शूद्र सेवा से प्राप्त धन को संचित करता था लेकिन उस का उपयोग स्वयं के लिए नहीं कर सकता था। उसे यही निर्देशित किया गया कि उस धन को केवल स्वामी के निमित्त ही रखे।[39] महाभारत से मालूम होता है कि कुछ शूद्र जैसे विदु, कायव्य और मतंग ऐसे जन्म से शूद्र थे जो कर्मों के कारण समाज में प्रतिष्ठित थे।

उपर्युक्त लेख में ऋग्वैदिक काल में वर्ण विहीन समाज तथा कर्म प्रधान व्यवस्था थी जिसमें सभी कार्य करने वाले लोग एक साथ रहते थे। ये एक आदर्श समाज की स्थिति थी। उत्तर वैदिक काल जिसमें तीन वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिपषदों की रचना होने का दीर्घकाल है। उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था प्रमुख रूप से उभरकर आती है जो आगे चलकर कर्म के स्थान पर जन्म आधारित होती चली गई। ब्राह्मण वर्ण के अधिकार सुरक्षित रहने का कारण है संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार। अर्थात् ब्राह्मण वर्ण के कर्त्तव्यों में अध्ययन– अध्यापन करना, यज्ञ करना, दान लेना व देना था। सभी ब्राह्मण धर्म ग्रन्थ किसी भी स्थिति में शूद्रों को मानसिक, शारीरिक, आर्थिक रूप से दबाये रखने की वकालत करते हैं। वैसे धर्म का अर्थ मानव कल्याण से है लेकिन यहाँ ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों में शूद्रों के प्रति व्यवहार से मानवता सर्मसार होती दिखाई देती है। गौतम बुद्ध ने भारत–भूमि पर जन्म लेकर मानवता का पाठ पढ़ाया।

निष्कर्ष

इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस देश को 'विश्व गुरू', देव भूमि' एवं 'सोने की चिड़िया' जैसे अच्छे विशेषणों से प्रचारित किया जाता रहा है, उसी देश का एक काला पक्ष ऐसा भी है जिससे हमारे देश को विश्व के अन्य समाजों में प्रायः घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। भारत में प्राचीन काल से ही समाज के एक बहुत बड़े वर्ग, जिसे हम शूद्र, अस्पृश्य, आदिवासी, दलित या अन्य कोई घृणित नाम दें, को सदैव समाज की मुख्यधारा से अलग रखा गया है और ऐसा अनायास अथवा अक्समात नहीं हुआ, अपितु ब्राह्मण धर्मग्रन्थों, स्मृतियों एवं महाकाव्यों में इस प्रकार की लिखित व्यवस्था की गई कि दलित वर्ग शिक्षा, सम्पत्ति, सम्मान एवं समाज से दूर रहे और इसका कार्य प्रथम तीन उच्च वर्णों की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करे। यद्यपि इस असमान एवं अन्यायपूर्ण हिन्दू धर्मग्रन्थीय व्यवस्था के खिलाफ महात्मा बुद्ध से लेकर देश की आजादी तक विभिन्न स्तरों पर प्रयास किये गये, लेकिन आज भी समाज में असमानता, अत्याचार एवं प्रताड़ना दिखाई देती है। धर्मग्रन्थों विशेषकर मनुस्मृति की इन्हीं भेदभाव एवं

अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं से दुःखी होकर भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर को मनुस्मृति का सार्वजनिक रूप से दहन करने को बाध्य होना पड़ा था। आज आवश्यकता इस बात की है कि अन्याय, असमानता एवं अमानवीय व्यवस्थाओं से भरपूर इन धर्मग्रन्थों से इस प्रकार के प्रावधानों को हटाया जाना चाहिए तभी देश में समता, स्वतन्त्रता एवं भ्रातृत्व पूर्ण समाज की स्थापना हो सकती है। हम इन ग्रन्थों को धर्म ग्रन्थ कहते है परन्तु जो मानवता के विरुद्ध ऐसी व्यवस्था हो धर्म ग्रन्थ नहीं हो सकते। धर्म का उद्देश्य मानवता कायम करना एवं मनुष्य मात्र का कल्याण करना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद 1.179.6 उभौ वर्णावृषिरूग्र पुपोष।*
2. *ऋग्वेद 1.73.7,9.104.4, 10.124.7*
3. *ऋग्वेद 10.90*
4. *ऋग्वद 9.112.3 कारूरहं ततोभिषगुपलप्रक्षिणी नना।*
5. *अथर्ववेद 3.5.7*
6. *तैतिरीय ब्राह्मण 1.1.4*
7. *आपस्तम्ब 1.1.1.5*
8. *गौतम धर्मसूत्र 8.12.13*
9. *गौतम धर्मसूत्र21.6.10*
10. *गौतम धर्मसूत्र 12.43 न शरीरी ब्राह्मण दण्डः ।।*
11. *गौतम धर्मसूत्र 10.1–3*
12. *बह्म सूत्र 1.3.34–38*
13. *अश्वलायन गृहसूत्र 1.19.1–6*
14. *मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, – 93*
15. *मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, –88*
16. *मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, –90*
17. *मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, – 91*
18. *मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, –104*
19. *मनुस्मृति, अष्टम अध्याय, –272*
20. *मनुस्मृति, नवम अध्याय, – 15,16,17*
21. *मनुस्मृति, नवम अध्याय,– 417*
22. *मनुस्मृति, नवम अध्याय, – 124*
23. *अत्री स्मृति– 19*
24. *अत्री स्मृति– 133*
25. *विष्णु स्मृति– 1/15*
26. *विष्णु स्मृति– 5/11*
27. *हारित स्मृति–2/13, 2/15*
28. *ओशनसी स्मृति– 8,9,10*
29. *आपस्तम्ब स्मृति– 8/10*
30. *आपस्तम्ब स्मृति–9/34*
31. *रामायण –3.4.29, महाभारत 6.67.18,1.28.3,12.76.19*
32. *महाभारत–12.36.41–48*
33. *महाभारत– 1.5.9.13–14*
34. *महाभारत– 7.26–33*
35. *महाभारत– 6.42–43*
36. *महाभारत– 12.188.1– 18, 5.132.30*
37. *महाभारत– 5.132.30, शान्तिपर्व 60.28*
38. *रामायण– 7.73.76*
39. *महाभारत– 12.60.6*